गोविन्द मिश्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चित्रण

डॉ. कमलेश, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, अंबाला छावनी।

किसी भी समाज के स्वरूप को समझने के लिए उसकी संस्कृति को समझना अनिवार्य है। संस्कृति किसी समाज तथा राष्ट्र की आत्मा होती है। संस्कृति मानव समाज में आंतरिक एवं बाह्य चेतना को संचारित कर जीवन में सत्य, शिव और सुन्दर को प्रकाशित करने वाली तेजस्वी दीपिका है। संस्कृति से ही किसी समाज में प्रचलित रीति–नीति तथा संस्कारों का बोध होता है। इन संस्कारों पर ही वहां के सामाजिक जीवन के आदर्श अवलंबित रहते हैं। संस्कृति मानव जीवन के विविध पक्षों में प्रतिबिंबित होती है। धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत, नृत्य तथा कला इत्यादि इसको अभिव्यक्त करने वाले माध्यम हैं। संस्कृति को परिभाषित करते हुए नालंदा विशाल शब्द सागर में लिखा गया है– "किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सभी बातें जो उसके मन, रुचि, आचार–विचार, कला–कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती है। कल्चर, शुद्धि सफाई कहलाती है।"[1] इस प्रकार संस्कृति अपने आप में बृहत अवधारणा है। उसे परिभाषित करने का प्रयास अनेक विद्वानों द्वारा किया गया है। संस्कृति के महान चिंतक एवं आख्याता डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "सभ्यता का आंतरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है और संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का।"[2] अतः द्विवेदी जी संस्कृति तथा सभ्यता को भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार संस्कृति मानव के समग्र जीवन को संचालित एवं संस्कारित करने वाली है तथा सभ्यता का संबंध बाह्याचार से है। संस्कृति जीवन व्यापिनी चेतना है तथा सभ्यता शरीर पर धारण किए हुए आभूषण के समान है। सभ्यता का संबंध शरीर से है, तो संस्कृति का संबंध आत्मा से है। सभ्यता जीवन का बाह्य पक्ष है संस्कृति आंतरिक पक्ष है। संस्कृति का संबंध मूल्यों से होता है। किसी भी देश, राष्ट्र की परिस्थितियों में परिवर्तन आने से वहां प्रचलित सांस्कृतिक मूल्य भी प्रभावित होते हैं। ये मूल्य पूरी तरह परिवर्तित न होकर प्रभावित होते हैं। भारत की संस्कृति में रीति–रिवाज, परम्परा, अनुष्ठान, संस्कार, तीज–त्यौहार, लोक विश्वास, खान–पान एवं पहनावा इत्यादि सम्मिलित रहते हैं।

आधुनिक समय में देश–कालीन परिस्थितियों में परिवर्तन आने के कारण सांस्कृतिक धारणाएं भी प्रभावित हो रही हैं। सांस्कृतिक मूल्यों को तर्क की कसौटी पर कसा जाने लगा है अतः कई परम्परागत मूल्यों को वर्तमान पीढ़ी द्वारा त्याज्य माना जाने लगा है। शिक्षा की प्रसार के कारण नारी जागृति चरमोत्कर्ष पर है। बौद्धिकता प्रधान है। धार्मिक तथा सामाजिक रूढ़ियों की दीवारें गिरने लगी हैं। विज्ञान के नए–नए आविष्कारों का प्रभाव आधुनिक युग पर पड़ा है। इन बदलते मूल्यों तथा सांस्कृतिक दृष्टि को आधुनिक साहित्यकारों ने उसके बदलते स्वरूप को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। गोविन्द मिश्र हिन्दी साहित्य के एक विख्यात रचनाकार है उन्होंने अपनी रचनाओं में भारतीय समाज तथा संस्कृति के विविध पक्षों को बड़ी गहनता तथा सहज तरीके से चित्रित किया गया जिसका अध्ययन निम्नलिखित अनुसार किया जा रहा है।

रीति–रिवाज

प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है जो परम्परागत मान्यताओं का निर्वाह करती हुई रीति–रिवाजों को लेकर आगे बढ़ती है। इस संदर्भ में वसन्त निरगुणे लिखते हैं, "प्रथा परम्परा को निभाने की क्रिया को रीति कहते हैं। रीति पारम्परिक क्रियात्मकता का नाम है और रिवाज–रीति की सामूहिक स्वीकृति है। दोनों मिलकर रीति–रिवाज बना है।"[3] अतः परम्परा से चली आ रही प्रथाएं समय द्वारा स्वीकृत होती हैं। भारतीय लोक जीवन में रीति–रिवाज जन्म के पूर्व से शुरू हो जाते हैं। गोविन्द मिश्र ने अपने कथा साहित्य में भारतीय संस्कृति में प्रचलित विभिन्न रीति–रिवाजों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। उनके उपन्यास 'पाँच आँगनो

वाला घर' में भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों, रीति–रिवाजों, धार्मिक उत्सवों का चित्रण किया गया है जिसमें से एक रिवाज जिसमें नवेली दुल्हन का प्रथम चरण अपने घर को लगाना शुभ माना जाता है, का चित्रण किया गया है। उसे घर की लक्ष्मी माना जाता है। आलोच्य उपन्यास में भी शादी के दिन डोली उठाकर बारात सीधे दुल्हे के दरवाजे पर ही रुकती है। नई दुल्हन की पूजा, आरती करके उसका गृह–प्रवेश किया जाता है। इसलिए राजन जब अपनी सुहागरात किसी बाहर होटल में मनाने की सोचता है तो रम्मो मौसी उसका विरोध करती है, "पहले पहल तो बहु के चरण घर में ही पड़ते हैं। घर के दरवाजे पर उसकी पूजा होती है कि लक्ष्मी आई। आरती उतारी जाती है।"[4] इस प्रकार नवेली बहू को घर की लक्ष्मी मानकर उसके पांव घर की चौखट को लगाने का रिवाज भारतीय लोग में प्रचलित है। उनमें एक दूसरे उपन्यास 'हुजूर दरबार' में सामंती संस्कृति का चित्रण किया गया है। आलोच्य उपन्यास में सामंत वर्ग की जीवन–शैली, आचार–व्यवहार तथा रीति–रिवाज का चित्रण किया गया है। राजा तथा प्रजा की जीवन शैली में भिन्नता होते हुए भी दोनों के रीति–रिवाज एक से हैं। अतः गोविन्द मिश्र जी की कहानियों तथा उपन्यासों में भारतीय समाज में प्रचलित रीति–रिवोजों को बड़ी सजीवता से चित्रित किया गया है।

पर्व एवं त्यौहार

भारतीय लोक जीवन में रीति–रिवाजों की भांति ही पर्वों एवं त्यौहारों का विशेष महत्त्व है। इनका संबंध धार्मिक व सामाजिक जीवन से जुड़े महत्त्वपूर्ण अवसरों से है। इन पर्वों एवं त्यौहारों को बड़ी धूमधाम और निष्ठा से मनाया जाता है इनके महत्त्व को रेखांकित करते हुए डॉ. वणजारा बेदी कहते हैं, "त्यौहारों का आरंभ मानव की सामूहिक विकास भावना में बद्धमूल है और इन्हीं रंगीन धुरियों के इर्द–गिर्द जाति का समूचा सामाजिक, धार्मिक और बन्धुत्व जीवन चक्की के पाटों–सा घूमने लगता। त्यौहारों में अन्तर्मन खिलता और महकता है और लोगों में नई शक्ति उभरती और नवीन संकल्प जागते हैं।"[5] अतः त्यौहारों तथा पर्वों के द्वार ही समाज के लोगों में सामूहिकता की भावना जागृत होती है और एक नई चेतना का संचार होता है। गोविन्द मिश्र के कथा साहित्य में कई जगह मेलों तथा त्यौहारों का उल्लेख मिलता है। इनके उपन्यास 'पाँच आँगनों वाला घर' में कुम्भ के मेले का वर्णन देखने को मिलता है। जिसमें प्रयागराज में आयोजित कुम्भराज के मेले में साधुओं की टौलियों का एक दृष्यत यहां प्रस्तु है– "इलाहाबाद के कुम्भ के लिए एक टोली जा रही थी। सन्नी चुपचाप साथ लग लिया। संगम के रेतीले मैदान पर साधुओं के ठहरने के लिए अखाड़े थे। हर आखाड़े में मुख्य स्थान गुरु महाराज का । आसपास चारों तरफ एक–एक खेमा गुरु की फौज़ के लिए।"[6] इस प्रकार कुम्भ विश्व के सबसे बड़े मेले के रूप में लगता है। भारत में ऐसे हजारों मेले लगते हैं जो गाँव, राज्य विशेष में मनाए जाते हैं। इसके अलावा मिश्र जी के कथा साहित्य में दशहरा, होली, दीवाली, पूर्णिमा जैसे त्यौहारों का चित्रण देखने को मिलता है। होली और दशहरा मेलों पर राजा द्वारा किए आयोजन का वर्णन 'हुजूर दरबार' उपन्यास में किया गया है जिनका आयोजन महाराज रुद्रप्रताप सिंह के साम्राज्य में राज्य की ओर से किया जाता है– "होली और दशहरा दो ऐसे सार्वजनिक त्यौहार थे जिन पर स्टेट की तरफ से खर्च किया जाता था और महाराज अपने तरीके से इनमें हिस्सा लेते थे। दोनों ही मौकों पर महाराज का एक भव्य जुलूस रियासत की मुख्य सड़कों से गुजरता था होली के लिए पच्चीस हजार का बजट था। उस जमाने के हिसाब से यह भारी रकम थी। इन त्यौहारों पर राजा प्रजा का भेदभाव मिट जाता था। यह पर्व त्यौहार लोगों के आपसी संबंधों को मजबूत करने का माध्यम बनते हैं, क्योंकि इनमें सम्मिलित लोग आपसी ईर्ष्या–द्वेष मिटाकर इकट्ठे होकर इनको मनाते हैं और ये सामाजिक संरचना में संबंधों को मजबूत करने का कार्य करते हैं।

लोक व्यवहार

लोक व्यवहार मनुष्य की मानसिक क्षमता, संस्कृति, सभ्यता और नैतिकता का परिचायक है। डॉ. सुखविंदर कौर 'बाठ' के अनुसार, "लोक व्यवहार मनुषय के संबंधों की व्याख्या भी करता है। मानव अपने समाज में उठता बैठता है, बोलता चालता है, लेन–देन करता है, रिश्ते बनाता है, रक्त सम्बंधों का सम्मान करता है, मतलब, जन्म से मरण तक जो कार्य करता है, वह सब लोक व्यवहार में गिना जा सकता है।[7]

इस प्रकार लोक व्यवहार में मानव के आचार–व्यवहार के सभी पक्ष आ जाते हैं। व्यवहार मानव के चरित्र, संस्कृति, आदर्श एवं मूल्यों को दर्शाता है। मानव के व्यवहार से ही उसके व्यक्तित्व की छवि बनती है। अच्छे और बुरे की कल्पना, घटिया या श्रेष्ठ चरित्र की कल्पना मनुष्य के व्यवहार पर निर्भर करती है। व्यक्ति का मूल्यांकन उसे व्यवहार और शिष्टाचार के आधार पर होता है। व्यक्ति के चारित्रिक गुणों में शिष्टाचार का विशेष महत्त्व है। अतिथि सत्कार, बड़ों का आदर, छोटों से स्नेह तथा सदकर्म आदि गुण शिष्टाचार के अन्तर्गत आते हैं। अतिथि को भगवान का रूप मानकर निष्काम भाव से उसकी सेवा करना भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। उनकी कहानियों खंडित तथा शिकार में अतिथि सत्कार से हृदय परिवर्तन दिखाया गया है। अतिथि सत्कार जैसे संस्कारों के भारतीय समाज में अतिथि को जो आदर दिया जाता है वह अतिथि के प्रति आत्मीय संबंधों को दर्शाता है।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव :

भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति की पकड़ धीरे–धीरे मजबूत होती जा रही है। खान–पान पर भी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण आज अतिथि का स्वागत चाय से नहीं बल्कि शराब से किया जाता है। इसी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव का उल्लेख करते हुए 'उतरती हुई धूप' उपन्यास में भाई साहब से अरविन्द कहता है, "अब देखिए साब... बड़े शहरों में शराब पीना बड़ी आम बात समझी जाती है, दरअसल शाम को किसी के घर जाइए तो अगर वे पैसे वाला तो चाय नहीं विस्की चालयेगा....।[8] इस प्रकार भारतीय समाज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावाधीन अपनी सभ्याता के विपरीत आचरण करने लगा है।

आज की युवा पीढ़ी जब एक दूसरे से मिलते हैं तो हैलो या हाय से एक दूसरे का स्वागत करते हैं जबकि पुरानी पीढ़ी नमस्कार या आदाब या राम...राम आदि से एक दूसरे का स्वागत करते थे। आज की युवा पीढ़ी में इस पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव पर चिंता व्यक्त करते हुए 'तुम्हारी रोशनी में' उपन्यास में सुवर्णा से अनंत कहता है– "बच्चों की वैयक्तियता को उभरने की बजाय कैसे दबाती है। उनके हाव–भाव एकदम एक कोई किसी से मिले तो हाय, बिछुड़े तो बाय। सब आदमी अंकल, सब औरतें आंटी। पति–पत्नी, प्रेमी–प्रेमिका के बीच भी वही शब्द– हाय... बाय।[9] इस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव सामाजिक जीवन के सभी पक्षों पर पड़ रहा है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गोविन्द मिश्र के लेखन में समय के साथ समस्याओं को नए कलेवर में रखने का हुनर है। मिश्र जी ने अपने कथा साहित्य में समाज और संस्कृति को विशेष स्थान प्रदान किया है। उनके उपन्यासों तथा कहानियों में भारतीय संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। इन्होंने उपन्यासों तथा कहानियों में चित्रित समाज और उसमें घटित होने वाली घटनाओं तथा हर परिस्थिति का सूक्ष्म अंकन करने की क्षमता रखते हैं। उनके कथा साहित्य में स्त्री जीवन, गरीबी, भूखमरी, ऊंच–नीच के भेदभाव के साथ परम्परा के प्रति यथार्थवादी लगाव, संस्कृति और धर्म के प्रति यथार्थवादी मानवीय सोच आदि का समिश्रण प्रस्तुत किया है। साहित्य अपने समय का साक्षी होता है उसी प्रकार गोविन्द मिश्र जी ने भी ईमानदारी से अपने कथा साहित्य में समाज तथा संस्कृति को लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। धर्म संबंधी उनकी यथार्थवादी सोच जिसे वैज्ञानिक सोच भी कहा जा सकता है। स्त्रियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, मंडल कमीशन जैसी राजनीति प्रेरित व्यवस्था का समर्थन, शिक्षा व्यवस्था की कड़ी आलोचना, सामंती परिवेश और सोच का विरोध सब समकालीन समय में पल रहे राजनीतिक संकट एवं युवाओं के बहके हुए चरित्र का भी

खुलासा किया गया है। इस प्रकार भारतीय समाज तथा संस्कृति चित्रित किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों तथा कहानियों के माध्यम से भारतीय समाज की संरचना तथा उसकी प्रक्रिया को उसके वास्तव रूप में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने समाज में प्रचलित भारतीय संस्कृति के विविध पहलुओं – विचारधारा, मान्यताओं, रीति–रिवाजों, अंधविश्वासों, त्यौहारों–पर्वों तथा समाज में प्रचलित अन्य धारणाओं को अभिव्यक्त किया है इसके साथ ही भारतीय समाज पर पाश्चात्य संस्कृति के नकारात्मक प्रभावों को भी अभिव्यक्त किया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय समाज अपनी परम्परागत मान्यताओं से जुड़ा हुआ है, परन्तु पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव स्वरूप उसमें पाश्चात्य जीवनशैली का प्रभाव परिलक्षित होता है जो भारतीय संस्कृति के लिए नकारात्मक पक्ष है।

संदर्भ

1 श्री नवल जी (संपा.), नालंदा विशाल शब्द सागर (दिल्ली : आदीश बुक डिपो, सं. 2012), पृ. 576
2 हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क (इलाहाबाद : साहित्य भवन, सं. 1969), पृ. 164
3 वसन्त निरगुणे, लोक संस्कृति (मध्यप्रदेश : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सं. 1992), पृ. 65
4 गोविन्द मिश्र, पाँच आँगनों वाला घर (नई दिल्ली : राधाकृष्ण, सं. 1995), पृ. 42
5 सुखविंदर कौर 'बाठ', पंजाबी लोक साहित्य संस्कृति का आईना (दिल्ली : शिवहरि प्रकाशन, सं. 2002), पृ. 103-104
6 गोविन्द मिश्र, हुजूर दरबार (नई दिल्ली : किताब घर प्रकाशन, सं. 1981), पृ. 163
7 सुखविंदर कौर 'बाठ', पंजाबी लोक साहित्य संस्कृति का आईना (दिल्ली : शिवहरि प्रकाशन, सं. 2002), पृ. 100
8 गोविन्द मिश्र, तुम्हारी रोशनी में (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सं. 2004), पृ. 86
9 वही, पृ. 31